RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल-011/2015-17

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 75, अंक : 10 एक प्रति 2 : रुपये
रविवार 20 मई, 2018
विक्रमी सम्वत् 2075, सृष्टि सम्वत् 1960853119
दयानन्दाब्द : 194 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये
दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–75, अंक : 10, 17-20 मई 2018 तदनुसार 7 ज्येष्ठ सम्वत् 2075 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

जो तुम्हारे भले के लिए देता है, वह अपना घर बनाता है

ले०-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्पर्यरिष्टः सर्व एधते।।

-ऋ. ८।२७।१६

शब्दार्थ-सः = वह अपना **क्षयम्** = घर, निवासस्थान **प्र+तिरते** = बढ़ाता है और **महीः** = बहुत **इषः** = अन्न **वि** = बाँटता है **यः** = तुम्हारे **वराय** = भले के लिए **दाशति** = देता है। वह **प्रजाभिः** = सन्तानों के द्वारा **प्र+जायते** = समृद्ध होता है और **अरिष्ट** = अहिंसित होता हुआ **सर्वः** = सब तरह **धर्मणः+परि** = धर्म के कारण **एधते** = बढ़ता है। अथवा **सः** = वह **क्षयम्** = विनाश को **प्र+तिरते** = अच्छी तरह पार कर जाता है **यः** = जो **वः** = तुममें से **वराय** = श्रेष्ठ के लिए **महीः+इष** = महती इच्छाएँ, या बहुत अन्न **वि+दाशति** = देता है। वह सन्तानों के साथ समृद्ध होता है और दुःखरहित होकर धर्म के कारण सब तरह समृद्ध होता है।

व्याख्या-इस मन्त्र में दान देने की प्रेरणा के साथ पात्रापात्र-विचार का सङ्केत भी है। दान अवश्य देना चाहिए। भगवान् ने हमें दिया है, हम भी आगे दें, तो यह भगवान् के आराधने का सरल-सा उपाय बन जाता है। वेद कहता है-'**जही न्यत्रिणं पणिं वृको हि षः**' [ऋ० ६।५१।१४]=बनिये के समान जो अकेला खाने वाला है, उसको मार डाल, क्योंकि वह भेड़िया है। अकेले खाने वाले के लिए भय मुख बाये सामने खड़ा है, अतः वेद कहता है-'**प्र स क्षयं तिरते...दाशति**' वह तो विनाश को लाँघ जाता है, जो श्रेष्ठ मनुष्य को...दान देता है।

संसार में अन्नदान की समता कोई नहीं कर सकता। घर, वस्त्र, सवारी के बिना तो जीवनयात्रा चल जाती है, किन्तु अन्न के बिना बड़ा सङ्कट आता है। '**अन्नं वै प्राणिनां प्राणः**' = अन्न तो प्राणियों का प्राण है, जीवनधारियों का जीवनाधार है, अतः अन्नदान मानो जीवनदान है। जीवनदान के समान कोई दान हो ही कैसे सकता है ? इसी कारण यहाँ भी-'**महीरिषो...दाशति**' = [बहुत अन्न...देता है] कहा है। **इष्** = अन्न के साथ 'महीः' विशेषण बहुत गम्भीर भाव का आवेदक है। हमने इसका अनुवाद 'बहुत' किया है, किन्तु इससे भाव पूर्णतया व्यक्त नहीं होता। इसका अर्थ 'पूज्य' कर दिया जाए तो कुछ-कुछ भावव्यक्ति में स्पष्टता हो जाती है। जीवन-रक्षण के साधन यदि पूज्य नहीं, तो फिर संसार में कोई भी पूज्य नहीं। भगवान् भी तो इसी कारण पूज्य है कि वह जीवन-रक्षणसाधन प्रदान करता है, अतः अन्न अवश्य पूज्य है। पूज्य पदार्थ दान करने वाला सब विपत्तियों और कष्टों को पार कर जाता है, मानो वह अपने लिए विशाल घर बना रहा है। अन्नदान बड़ा धर्म है। धर्म का फल वृद्धि है-'**धर्मणस्पर्यरिष्टः सर्व एधते**' = धर्म के कारण, किसी प्रकार की हानि न उठाता हुआ, सब प्रकार से बढ़ाता है। गृहस्थ के लिए वृद्धि का प्रमाण धन-धान्य और सन्तान की वृद्धि है, अतः वेद कहता है-'**प्र प्रजाभिर्जायते**' = सन्तान के कारण समृद्धिमान् होता है।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

आगामी आर्य महासम्मेलन बरनाला में

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.), गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा जालन्धर के तत्वावधान में आगामी आर्य महासम्मेलन **11 नवम्बर** 2018 को बरनाला में आयोजित किया जा रहा है। इसलिये पंजाब की समस्त आर्य समाजों से निवेदन है कि वह इन तिथियों में अपनी अपनी आर्य समाज का कोई कार्यक्रम न रखें और इस आर्य महासम्मेलन को सफल बनाने के लिये पूरी शक्ति से जुट जाएं। आपके सहयोग से इससे पूर्व 17 फरवरी 2017 को लुधियाना और 5 नवम्बर 2017 को नवांशहर में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब सफल आर्य महासम्मेलन कर चुकी है। आशा है इस आर्य महासम्मेलन में भी आप का पूरा पूरा सहयोग मिलेगा।

प्रेम भारद्वाज
सभा महामंत्री

इन्द्रश्च मृडयाति नो नः पश्चादघं नशत्।
भद्रं भवाति नः पुरः।।

-ऋ० २.४१.११

भावार्थ-पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर, अपनी अपार दया से हमें सुखी करे। हमारे आगे, पीछे कहीं दुःख का नाम न हो, जिधर भी देखें सुख-ही-सुख हो, कल्याण की वर्षा होती हुई दिखाई देवे।

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्।
जेता शत्रून् विचर्षणिः।।

-ऋ० २.४१.१२

भावार्थ-हे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर! जिस-जिस दिशा से और जिस-जिस कारण से हमें भय प्राप्त होने लगे, उस-उस दिशा से और उस-उस कारण से हमें निर्भय करें। भगवन्! आपके प्रेमी भक्तों के जो शत्रु हैं। उन सब को आप भली प्रकार जानते हैं, आपसे कोई भी छिपा नहीं। उन हमारी जाति और धर्म के विरोधी बाहिर के शत्रुओं से, और विशेष कर अन्दर के काम, क्रोध, लोभादि हमारे घातक शत्रुओं से हमारी रक्षा कीजिए।

मुक्ति-मीमांसा

ले.-डॉ. वेदपाल मेरठ

दृश्यमान नामरूपात्मक जगत् की सत्ता मनुष्य मात्र को स्वीकार है। यह स्थूल होने के कारण चाक्षुष प्रत्यक्ष का विषय है। भले ही इसका मूल अदृश्य हो। दृश्य जगत् का मूल-मूलप्रकृति तथा महत् आदि अदृश्य (चाक्षुष प्रत्यक्ष का विषय नहीं) है। अर्थात् कारणावस्था अदृश्य तथा कार्यावस्था दृश्य है। इस स्थूल दृश्य जगत् का द्रष्टा इससे पृथक् एक दूसरी सत्ता है। इन दोनों सत्ताओं (जगत् एवं जीव) को सभी पृथक्-पृथक् मानते हैं। द्रष्टा को जीव, आत्मा, जीवात्मा नामों से सम्बोधित किया जाता है। द्रष्टा के स्वरूप के विषय में मतैक्य नहीं है। तद्यथा-

1. सत्ता अनादि है। अतः उत्पन्न नहीं होती है और इसीलिए नष्ट भी नहीं होती, किन्तु यह चाक्षुष प्रत्यक्ष का विषय नहीं है।

2. कतिपय रासायनिक अभि-क्रियाओं के परिणाम स्वरूप यह उत्पन्न होती है, अतः नष्ट भी होती है। अर्थात् शरीर के साथ उत्पत्ति और इसी के साथ समाप्ति हो जाती है। इसका पुनरागमन नहीं होता।

3. रासायनिक अभिक्रियाओं का परिणाम न होकर अपने से अधिक शक्ति एवं ज्ञानसम्पन्न सत्ता के द्वारा उत्पाद्य है। उत्पन्न होने के कारण नष्ट भी होती है। इस मत के अनुसार शरीर के साथ उत्पत्ति तो होती है, किन्तु शरीर के साथ समाप्ति न होकर निर्णय (कयामत) के दिन उस ज्ञान एवं शक्तिसम्पन्न के समक्ष उपस्थित होती है तथा कृत कर्मों के भोग (जन्नत/दोज़ख) के अनन्तर पुनः इसकी उत्पत्ति/पुनर्जन्म नहीं होता।

उपरिवर्णित द्वितीय एवं तृतीय मत से प्रथम मत अत्यधिक भिन्न है। इसके अनुसार यह नित्य है। केवल शरीर के माध्यम से इसकी अभिव्यक्ति होती है। जिस प्रकार शरीर के साथ उत्पन्न नहीं होती, उसी प्रकार शरीर के साथ नष्ट भी नहीं होती। पुनः कृतकर्मों के अनुसार किसी अन्य शरीर की प्राप्ति-संयोग होता है। यह क्रम सृष्टि के प्रारम्भ से प्रलय पर्यन्त तथा पुनः अगली सृष्टि में इसी प्रकार चलता रहता है। जब तक जन्म-मरण (जीव का शरीर के साथ संयोग व शरीर से वियोग) के इस प्रवाह को अवरूद्ध न कर दिया जाए। इस विषय में दो प्रमुख पक्ष हैं-

1. यह जन्म-मरण का प्रवाह सदा-सदा के लिए रुक जाता है। इसके पश्चात् इसका किसी भी शरीर (किसी भी योनि में प्राप्त होने वाला शरीर) से संयोग नहीं होता है। इस अवरोध का नाम मुक्ति या मोक्ष है। यह सदैव के लिए है।

2. जन्म-मरण का यह प्रवाह कर्मों के माध्यम से अवरूद्ध किया जाता है। अतः सान्त कर्मों का फल भी सान्त ही होगा। परिणाम स्वरूप इस प्रवाह का अवरोध भी एक निश्चित काल के लिए ही होता है। महर्षि दयानन्द इस द्वितीय मत के प्रबल पक्षधर हैं। अतः उनके अनुसार यह अवरोध मुक्ति भी सर्वाधिक है। मुक्तिकाल पूर्ण होने पर जीव पुनः शरीर धारण करता है।

स्थूल जगत्/सृष्टि का सृजन एवं नियमन तथा जीव के कृतकर्मों के फल की व्यवस्था करने वाली एक तीसरी सत्ता है। यह इन दोनों से सूक्ष्म किन्तु ज्ञान एवं शक्तिसम्पन्न है। इस प्रकार ये तीन सत्ताएं हैं।

1. जगत् 2. जीव 3. ईश्वर

जगत् जड़ है। जीव अल्पज्ञ, चेतन, एकदेशी, कर्म करने में पूर्ण स्वतन्त्र किन्तु ईश्वरीय व्यवस्था से कृत कर्मों के फल का भोक्ता है। ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, न्यायकारी, जगत् स्रष्टा जीवों को कर्मफल प्रदाता, किन्तु भोक्ता नहीं है।

जीव को शरीर के साथ कुछ करण/इन्द्रियां प्राप्त होती हैं। इनके माध्यम से वह जहां कर्म करता है, वहीं उन कर्मों के अनुकूल एवं प्रतिकूल परिणाम को प्राप्त करता है। अनुकूल परिणाम की प्राप्ति कर सुख एवं प्रतिकूल परिणाम की प्राप्ति कर दुःख का अनुभव करता है। इससे सुखोपलब्धि में 'राग' तथा दुःखोपलब्धि पर द्वेषभाव उत्पन्न होता है। जीव मात्र सुख चाहता है और दुःख से दूर होना चाहता है। सामान्यतः उसका प्रयास साम्प्रतिक उपस्थित दुःख से बचने के लिए होता है। जितना-जितना विवेक जागृत होता जाता है, वह उपस्थित से बढ़कर अनुपस्थित अर्थात् भविष्यत् काल में आने वाले दुःख के प्रति भी संवेदनशील होकर उस अनागत दुःख को दूर करने/रोकने का प्रयत्न करने लगता है। उपस्थित-अनागत उभयविध दुःखों में सबसे बड़ा दुःख मृत्यु का दुःख है। जन्म, जन्म के बाद मृत्यु, पुनः जन्म, पुनः मृत्यु, जन्म-मृत्यु का यह अनवरत चलने वाला चक्र सबसे बड़ा दुःख है। इसे बन्धन पद से भी अभिहित किया गया है। जन्म को समाप्त अथवा रोके बिना मृत्यु से छुटकारा सम्भव नहीं है। अतः जन्म-मरण के प्रवाह को रोक देना दुःख या बन्धन से छूटने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन है। इसी को मुक्ति, मोक्ष, अपवर्ग, कैवल्य आदि पदों से कहा गया है। सभी धार्मिक मत-पन्थ इसके अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। अतः सभी मतों में इसकी प्राप्ति विषयक वर्णन उपलब्ध होता है।

बन्धन से छूटने के उपाय अथवा मुक्ति प्राप्त करने के साधन दोनों में तत्वतः कोई अन्तर नहीं है। जिन कारणों से बन्ध होता है। उनका अथवा अथवा बन्धहेतुओं के प्रतिबन्धक हेतु का सद्भाव मुक्ति के लिए अपेक्षित है। प्रथमतः बन्धकारण संक्षेप प्रस्तुत है-

1. स्थूल देह/शरीर से सम्बन्धः जीव स्थूल शरीर से सम्पृक्त होकर ही सुख-दुःख का अनुभव करता है। शरीर का अभिप्राय ही है-शीर्ण होने वाला-शीर्यते इति शरीरम्, किन्तु जीव इसके विपरीत अमृत है। अमृत जीव का अधिष्ठान यह नश्वर शरीर है। शरीर के साथ रहते प्रिय-अप्रिय अर्थात् सुख-दुःख से छुटकारा नहीं है। अशरीर-स्थूल शरीर से पृथक् होने पर प्रिय-अप्रिय स्पर्श नहीं करते। न्यायदर्शनकार गौतम ने दुःख के मूल जन्म के छूटने पर ही अपवर्ग (दुःखों से छूटना) प्राप्ति कही है। वहां दुःख-जन्म प्रवृत्ति-दोष-मिथ्याज्ञान के उत्तरोत्तरापाय (उत्तर-पश्चात्वर्ती के हटने पर उससे पूर्ववर्ती का हटना) को प्रक्रिया रूप में वर्णित किया है।

2. अविद्या-दुःख-दुःखसमुदाय की उत्पत्ति का मूल अविद्या है। महर्षि दयानन्द अविद्या को तो बन्धन का हेतु मानते ही हैं, साथ ही वह योगसूत्र के भाव को ग्रहण कर अपवित्र मिथ्याभाषणादि कर्म और जड़ोपासना तथा ईश्वराज्ञाभङ्ग को भी बन्धन का हेतु मानते हैं।

अविद्या ही अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश नामक क्लेशों की प्रसव भूमि है। पतञ्जलि ने इन पांचों को क्लेश कहा है। यह क्लेश ही कर्माशय का मूल है। इसके रहते जीव जाति, वायु और भोग को प्राप्त करता है।

मुक्ति-दुःख का अत्यन्त उच्छेद होना मुक्ति या अपवर्ग है। मुक्ति के लिए मोक्ष एवं अमृत शब्द भी प्रयुक्त है। बौद्ध मत में प्रयुक्त निर्वाण पद आंशिक रूप में समानार्थक है। मुक्ति न तो भौतिक है और न ही सूक्ष्मभूतों के समान अर्धभौतिक। अतः किसी एकदेश में होना तथा अन्यत्र न होना-इस प्रकार का प्रयोग नहीं हो सकता। पतञ्जलि ने इसे कैवल्य कहा है। महर्षि दयानन्द के अनुसार ब्रह्म की प्राप्ति ही मोक्ष है। वह कोई स्थान पर पदार्थ विशेष नहीं है।

मुक्ति के साधन-पतञ्जलि के अनुसार बन्धन हेतु क्लेशों को निवृत्त कर समाधि का सहायक क्रियायोग मुक्ति का महत्वपूर्ण साधन है। महर्षि दयानन्द के अनुसार-ईश्वराज्ञापालन, सत्य भाषण, परोपकार, परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना अर्थात् योगाभ्यास करना, न्याय धर्म की वृद्धि करना तथा कुसङ्ग, कुसंस्कार और दुर्व्यसनों से दूर रहना मुक्ति का साधन है।

मुक्तिकाल-मुक्ति की अवधि को लेकर कई विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है। इस अवधि को महाकल्प-परान्तकाल कहा गया है। महर्षि दयानन्द तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष की चतुर्युगी, 2. सहस्त्र चतुर्युगी का अहोरात्र, तीस अहोरात्र का 1 महीना, 12 महीने का 1 वर्ष, ऐसे शतवर्ष का परान्तकाल मानते हैं। अर्थात् 31 नील, 10 खरब, 40 अरब वर्ष मुक्ति का काल है।

पुनरावृत्ति-मुक्ति की अवधि/काल पर विचार करने पर यह स्वाभाविक प्रश्न है कि अवधि निर्धारण का अभिप्राय तो काल को सीमाबद्ध करना है। यदि मुक्तिकाल है, तब उससे पुनरावृत्ति या लौटना अपरिहार्य है। कतिपय आचार्य मानते हैं कि मुक्ति का अभिप्राय ही सदा-सदा के लिए जन्म-मरण से छूट जाना है, तब पुनरावृत्ति का अवसर ही कहाँ? किन्तु यहां महत्वपूर्ण प्रश्न है कि क्या मुक्ति जन्य है? क्या सदा से प्राप्त नहीं थी, अब प्रयत्न करने पर प्राप्त हो रही है। यदि हाँ, तब ऐसा कौन सा पदार्थ है जो जन्य तो है, किन्तु सदा रहने वाला है? उत्तर है-नहीं। जब कोई भी अनित्य वस्तु स्थायी-नित्य होना संभव नहीं, तब

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

धर्म के स ो स्वरूप को जानें

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने अभी कुछ दिन पहले सभी समाजों एवं शिक्षण संस्थाओं को अन्धविश्वास एवं पाखण्ड़ से जन-साधारण को जागृत करने के लिए एक छोटा सा ट्रैक्ट भेजा है जिसमें वर्तमान में धर्म के नाम पर प्रचलित अनेकों कुरीतियों पर प्रकाश ड़ाला गया है। यह अन्धविश्वास मानव एवं समाज के लिए घातक सिद्ध हो रहा है। आर्य समाज का यह कर्त्तव्य है कि अपने-अपने क्षेत्र में आर्य समाज के प्रचार-प्रसार को सक्रिय करें। धर्म के विषय में जो भ्रांतियां लोगों में हैं उन सभी का निराकरण इस छोटे से ट्रैक्ट में किया गया है। इसे अधिक से अधिक संख्या में छपवाकर या आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कार्यालय से मंगवाकर लोगों में बांटे, जिससे लोगों को इन पाखण्ड़ियों के जाल से मुक्ति मिलें। धर्म के नाम पर होने वाला शोषण बन्द हो। आज धर्म के सच्चे स्वरूप को जानने की आवश्यकता है। वेदों में, शास्त्रों में धर्म की क्या परिभाषा है? धर्म के लक्षण क्या हैं? इन विषयों पर थोड़ा सा चिन्तन और मनन करें।

धर्म का स्वरूप क्या है? यह एक विचारणीय विषय है। जब कोई ढ़ोगी बाबा या तथाकथित संत कोई अनैतिक कार्य करता है, अनाचार में लिप्त होकर समाज में उसका असली स्वरूप सामने आता है तो धर्म के नाम का मुद्दा शुरू हो जाता है। मीडिया वर्ग इस बात को प्रमुखता से दिखाता है धर्म के नाम पर बहस शुरू कर देता है और यह कहा जाता है कि धर्म की आड़ में बाबा के द्वारा किया गया घिनौना कृत्य, धर्म के नाम पर बाबा की दुकानदारी, धर्म की आड़ में लोगों को किया गुमराह। बाबा के द्वारा किए गए हर कृत्य को धर्म के साथ जोड़कर उसे धर्म का चोला पहना दिया जाता है। बाबा के द्वारा स्थापित किसी मत, पन्थ, सम्प्रदाय को धर्म का नाम दे दिया जाता है। मीडिया के किसी भी बुद्धिजीवी वर्ग ने यह जानने का प्रयास नहीं किया कि वास्तव में धर्म क्या है? इस बात का निष्कर्ष नहीं निकाला कि बाबा का यह कुकृत्य धर्म का विषय है भी या नहीं? इसी विषय को लेकर कुछ धर्म के ठेकेदारों को चैनल पर बिठाकर धर्म के नाम पर बहस शुरू हो जाती है। परन्तु आज तक कोई भी धर्म की सही परिभाषा नहीं बता पाया। इसका कारण यह है कि धर्म के विषय में उनका ज्ञान शून्य है। वे केवल हिन्दु, मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध, जैन आदि सम्प्रदायों को ही धर्म समझते हैं। कभी भी यह जानने का प्रयास नहीं किया कि वेद और शास्त्र धर्म के विषय में क्या कहते है? धर्म के विषय पर बहस शुरू कर देते है।

महर्षि मनु जी महाराज ने मनुस्मृति में धर्म के दश लक्षण गिनाएं हैं जिन लक्षणों में एक भी लक्षण आजकल के बाबाओं के जीवन में नहीं दिखाई देता-धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। पहला लक्षण (धृति) धैर्य रखना, दूसरा- (क्षमा) जो कि निन्दा स्तुति, मान-अपमान, हानि-लाभ आदि दुःखों में भी सहनशील रहना, तीसरा-(दम) मन को सदा धर्म में प्रवृत्त कर अधर्म से रोक देना अर्थात् अधर्म करने की इच्छा भी न उठे, चौथा- (अस्तेय) चोरी त्याग अर्थात् बिना आज्ञा या छल कपट, किसी व्यवहार तथा वेदविरूद्ध उपदेश से पर पदार्थ का ग्रहण करना चोरी, पांचवा- (शौच) राग-द्वेष पक्षपात छोड़ के भीतर और बाहर की पवित्रता रखना, छठा- (इन्द्रिय निग्रह) अधर्माचरणों को रोक के इन्द्रियों को धर्म में ही सदा चलाना, सातवां- (धीः) मादक द्रव्य बुद्धिनाशक अन्य पदार्थ, दुष्टों का संग, आलस्य प्रमाद आदि को छोड़ कर श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन, सत्पुरूषों का संग, योगाभ्यास से बुद्धि बढ़ाना, आठवां- (विद्या) पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त यथार्थ ज्ञान और उनसे यथायोग्य उपकार लेना, सत्य जैसा आत्मा में, वैसा मन में, जैसा वाणी में वैसा कर्म में वर्तना, इसके विपरीत अविद्या है। नवां- (सत्य)जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसा ही समझना, वैसा ही बोलना, वैसा ही करना भी तथा दशवां- (अक्रोध) क्रोधादि दोषों को छोड़ के शान्त्यादि गुणों को ग्रहण करना। ये दश धर्म के लक्षण हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने संस्कार विधि में इस श्लोक को उद्धृत करते हुए इसका भाष्य किया है। वहां महर्षि दयानन्द ने अहिंसा को भी धर्म का लक्षण मानकर धर्म के ग्यारह लक्षण माने हैं। महर्षि मनु जी कहते हैं कि जो विप्र या द्विज धर्म के इन दश लक्षणों का अध्ययन मनन करते हैं वे उत्तम गति को प्राप्त करते हैं। प्राणी जगत् में यदि कोई सर्वश्रेष्ठ प्राणी है तो वह है-मनुष्य। मानव जीवन सर्व शक्तियों का केन्द्र तथा सर्व सुखों का स्रोत है। यह आत्मा मानव जीवन को प्राप्त करके ही उन्नति की चरम सीमा तथा अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। आत्मा के अन्दर जो महान दिव्य शक्तियां निहित हैं उनका विकास इसी मानव जीवन में होना सम्भव है। यह मानव जीवन ही अपने चरम उत्कर्ष द्वारा स्वयं भी अपने जीवन को सुखमय बना सकता है और विश्व को भी सुख शांति का सन्देश सुना सकता है तथा देश, जाति और राष्ट्र का उत्थान कर सकता है। परन्तु मनुष्य राष्ट्र का उत्थान और उसे सुखी तभी बना सकता है जबकि वह पहले स्वयं अपना उत्थान कर ले।

मानव जीवन में उत्थान और उसे सुखमय बनाने का यदि कोई सर्वोत्तम साधन है तो वह है धर्म। धर्म वह शीतल जल है जो इस मानव जीवन रूपी वृक्ष को हरा-भरा रखता है तथा उसे पुष्पित तथा फलित बना देता है जिस के मधुर तथा स्वादिष्ट फलों का आश्वादन कर वह स्वयं भी सुख पाता है और अपने मधुर तथा स्वादिष्ट फलों द्वारा राष्ट्र को भी सुखमय बना देता है। इसके विपरीत धर्महीन मानव जीवन नीरस और फीका है। धर्म मनुष्य को विलासितामय जीवन से हटाकर उसे संयमी और सदाचारी बना देता है। वर्तमान में धर्म से विमुख होने के मुख्य रूप से दो कारण हैं एक सदाचार का न होना और दूसरा धर्म के वास्तविक स्वरूप को न समझना। आज जहां सदाचार से रहित जीवन मनुष्य को धर्मपरायण नहीं होने देता वहां धर्म के वास्तविक स्वरूप को न समझने के कारण मनुष्य धर्म से दूर होता जा रहा है।

आज लोगों ने धर्म के वास्तविक स्वरूप को न समझ कर वर्त्तमान में प्रचलित समुदायों, और मजहबों को ही धर्म समझ लिया है। जब मनुष्य इस समुदायों द्वारा प्रचलित नाना प्रकार के आड़म्बरों और देश तथा समाज की उन्नति में बाधक फिर रूढ़ी रिवाजों तथा कुप्रथाओं को देखता है तो धर्म से उदास हो जाता है। इन्हीं सम्प्रदायों, मजहबों तथा समुदायों को आज के राजनेताओं ने धर्म समझ कर अपने आपको धर्म निरपेक्ष घोषित कर दिया है। महाभारत में कहा है-**धर्मो धारयते प्रजा** अर्थात् प्रजाओं का धारण धर्म ही करता है। धर्म ही उसे सत्पथगामी बनाता है। ऋषि दयानन्द अपनी प्रसिद्ध पुस्तक संस्कार विधि में इसी धर्म के यथार्थ स्वरूप का निम्न मार्मिक शब्दों में वर्णन करते हैं- किसी से वैर वृद्धि करके अनिष्ट करने में कभी न वर्तना सुख, दुख हानि लाभ में व्याकुल होकर कभी कर्त्तव्य को न छोड़ना। धैर्य पूर्वक अपने कर्त्तव्य में स्थिर रहना, निन्दा, स्तुति, मान, अपमान का सहन करना। मन को सदा अधर्माचरण से हटा कर धर्माचरण में ही प्रवृत्त रखना। मन, कर्म, वचन से अन्याय और अधर्म के द्वारा किसी वस्तु का स्वीकार न करना। राग, द्वेष आदि के परित्याग से आत्मा और मन को पवित्र और जलादि से शरीर को शुद्ध रखना। श्रोत्र आदि इन्द्रियों को अकर्त्तव्यता से हटा कर्त्तव्य कर्मों में सदा प्रवृत्त रखना। वेदादि सत्य विद्या ब्रह्मचर्य, सत्संग करने और कुसंग दुर्व्यसन, मद्यपानादि के परित्याग से बुद्धि को सदा निर्मल बनाना। सत्य जानना, सत्य बोलना, सत्य कहना क्रोध आदि दोषों का परित्याग कर शान्ति आदि गुणों को धारण करना ही धर्म कहलाता है।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

उतम बुद्धि वाले ज्ञानवान बनें

ले०-डॉ. अशोक आर्य १०४ शिप्रा अपार्टमेन्ट, कौशाम्बी २०१०१० गाजियाबाद

परमपिता परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में चार वेद का ज्ञान चार पवित्र ऋषियों (जिनके नाम अग्नि, वायु, आदित्य और अंगीरा थे।) के माध्यम से जीव मात्र के कल्याण के लिए दिया। हमारी अथवा हमारे जीवन की कोई भी समस्या हो, उसका समाधान तो वेद देते ही हैं किन्तु इसके साथ ही साथ किसी समस्या के समाधान सम्बन्धी किसी प्रमाण की आवश्यकता हो तो, उसका समाधान वेद से ही मिलता है, अन्यत्र नहीं। हमारे किसी भी कार्य के सम्बन्ध में मूल स्रोत का पता लगाना हो तो उसका समाधान भी हम वेद से ही करते हैं। हमें क्या करणीय है तथा क्या नहीं?, इसके लिए भी हमें वेद की ही शरण में जाना होगा। इसलिए ही हम कहते हैं कि वेद स्वतः प्रमाण हैं। वेद की शरण आवश्यक: जब तक विश्व वेद के आदेशों का पालन करता रहा, जब तक विश्व में वेद ज्ञान का पालन होता रहा, तब तक विश्व में शांति रही, सबमें विश्वास रहा, सब लोगों में भ्रातृभाव बना रहा, सब लोग एक दूसरे का आदर करते रहे, विश्व धन-धान्य से संपन्न रहा, विश्व में किसी प्रकार का संकट नहीं खड़ा हुआ किन्तु ज्यों ही हम में से कुछ लोगों ने वेद के मार्ग को छोड़ा, ज्यों ही अपने मन के आधीन होकर स्वाधीन रूप से कार्य किया, त्यों ही विश्व के सामने संकट के बादल आ खड़े हुए। लड़ाई-झगड़े, कलह-क्लेश, अभाव, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बाढ़ और सूखे आदि की ही भाँति प्रकृति के अनेक प्रकोप हमें निगलने के लिए हमें ग्रसने के लिए आ खड़े हुए।

मनुष्य मात्र इन संकटों से उबरने का आज तक प्रयास कर रहा है किन्तु उसे कोई मार्ग दिखाई नहीं दे रहा। मार्ग दिखाई दे भी क्यों ? क्योंकि जिस वेद में इस संकट का समाधान है, वह उस वेद की शरण में जाते ही नहीं, जाना तो क्या उन्होंने वेद नाम के ग्रन्थ को देखा ही नहीं, जिस में सृष्टि के उदय के साथ ही परम पिता परमात्मा ने हमारी प्रत्येक समस्या का समाधान दिया है। जब तक हम वेद की शरण में नहीं जावेंगे न तो हमें हमारी समस्या का ही ठीक से ज्ञान होगा और न ही हम उसका समाधान ही खोज सकते हैं। इसलिए सुख के अभिलाषी प्राणी के लिए वेद का ज्ञान आवश्यक है, वेद की शरण आवश्यक है।

वेद सब के लिए प्राचीन काल से ही मार्ग दर्शक: जब हम हमारे प्राचीन साहित्य को देखते हैं तो हम पाते हैं कि यह सब साहित्य भी एक स्वर से हमें इंगित कर रहा है कि सब समस्याओं का समाधान वेद में है और वेद ही स्वत: प्रमाण हैं। अन्य कोई ग्रन्थ स्वत: प्रमाण नहीं है। भी उपनिषद्कार हुए हैं, वह भी सब, इस सब के अतिरिक्त हमारे इतिहास ग्रंथकार (रामायण, महाभारत, श्रौतसूत्रकार, धर्मसूत्र तथा गृह्यसूत्र आदि, इन सब के लेखकों ने स्पष्ट रूप से) वेद को ईश्वरीय ज्ञान स्वीकारते हुए, इन्हें स्वत: प्रमाण माना है। वेद के अतिरिक्त यह सब लेखक अन्य सब ग्रन्थों को परत: प्रमाण मानते हैं। जब हम इन सब ग्रंथों का अवलोकन करते हैं तो हमें इस सम्बन्ध में अनेक श्लोक मिलते हैं, जिनमें वेद को स्वत: प्रमाण होने का दावा किया गया है।

मनु महाराज ने तो अपने अमर ग्रन्थ मनुस्मृति में यह स्पष्ट स्वीकारते हुए इसके १२.१७ श्लोक में संकेत किया है कि वेद सब के लिए प्राचीन काल से ही मार्ग-दर्शक रहे हैं। वेद ने मानव के लिए नेत्र का कार्य किया है। वेद की महिमा को पूरी भाँति समझ पाना हमारे चार वर्ण, चार आश्रम, तीन काल तथा तीन लोक सम्बन्धी जितना भी ज्ञान है, यह सब वेद से ही हमें प्राप्त होता है। बृहदारण्यक उपनिषद् तो यह मानता है कि वेद उस महान् प्रभु के नि:श्वास रूप हैं। इस प्रकार के ही शब्द हमें हमारे अन्य ग्रन्थों में मिलते हैं।

इस सब से एक तथ्य निकल कर आता है कि अन्य ग्रंथों में यदि कोई प्रसंग इस प्रकार का आ जावे, जिसमें वेद के आदेशों के विरोध का आभास आता हो तो वह वचन अप्रमाणिक ही होंगे।

वेद सार्वकालिक उपदेश: हम जानते हैं कि वेद ही सार्वकालिक उपदेश हैं। यह इस सृष्टि के किसी भी भाग में तथा किसी भी समय में एक समान काम आते हैं। यह न कठिन हैं न कभी पुराने ही होते हैं और न ही कभी कालातीत होते हैं। इस कारण इनका सदा तथा प्रत्येक स्थान पर समान प्रभाव होता है तथा समान रूप से काम में आते हैं। इन मन्त्रों के मनन चिंतन से मानव मात्र की सब समस्याओं का समाधान होना स्वाभाविक ही है।

परम पिता परमात्मा बालक का इस प्रकार पालन करता है, जिस प्रकार पिता अपने बालक की अंगुली पकड़ कर उसे चलना, दूसरे का सम्मान करना आदि क्रियाओं को सिखाता है। ठीक उस प्रकार ही परमपिता भी पिताओं का भी पिता है।

जब यह छोटा सा सांसारिक पिता अपनी संतान की उन्नति के लिए प्रयास करता है तथा उसे आगे ले जाने के लिए सदा प्रयत्नशील रहता है तो फिर प्रभु तो संसार के समग्र प्राणियों का ही पिता है। संसार का अधिष्ठाता, संसार का जन्मदाता प्रभु फिर इसे उन्नति पथ पर क्यों न ले कर जावेगा ?, अवश्य ले जावेगा। वह ज्ञान का भंडारी अपनी इस प्रजा को वेद ज्ञान का भण्डार देने से क्यों पीछे हटेगा ? निश्चय ही नहीं। प्रभु सब प्राणियों को सुख बांटता है। प्रभु सब प्राणियों को समान रूप से वेद का ज्ञान बांटता है। प्रभु सब प्राणियों को आगे बढ़ने के साधन उपलब्ध कराता है किन्तु.....

कर्म व पुरुषार्थ पूर्ण प्रयत्न: परमपिता यह सब उन्नति के मार्ग जीव को देता है किन्तु ठीक वैसे जैसे पिता अपनी संतान को देता है। प्रत्येक पिता चाहता है कि उसकी संतान सच्चरित्र, आज्ञाकारी, बड़ों का आदर-सत्कार करने वाली, गुणवान व पुरुषार्थी हो। परमपिता परमात्मा तो एक दो का नहीं, पूरी सृष्टि का पिता होता है, उसने एक परिवार की नहीं, पूरे संसार की व्यवस्था करनी होती है। इसलिए प्रभु उस का ही सहयोग करता है, जो पुरुषार्थ के द्वारा अपना सहयोग स्वयं करते हैं। इसलिए प्रभु का आशीर्वाद पाने के लिए पुरुषार्थी होना आवश्यक होता है।

भाषा: मेरी पुस्तकें, मेरा लेखन विद्वानों के लिए नहीं सर्वसाधारण के लिए होती हैं। इसलिए कुछ इस प्रकार की भाषा का मेरी पुस्तकों में, मेरे लेखन में प्रयोग किया जाता है, जिसे सर्वसाधारण लोग बड़ी सरलता से समझ सकें। इसलिए मैंने बहुत साधारण जनभाषा, जो प्रचलित है, का ही प्रयोग किया है। इसे पढ़कर साधारण लोग भी वेद की गूढ बातों को सरलता से ग्रहण कर सकेंगे।

व्याख्यान कला का साधन: मेरी इस छोटी सी पुस्तक को व्याख्यान सिखाने का अति उत्तम साधन कह सकते हैं। जो व्यक्ति उत्तम ज्ञान नहीं रखते, जो व्यक्ति व्याख्यान तैयार नहीं कर सकते, उनके लिए इस पुस्तक में बने बनाए व्याख्यान तैयार हैं। यह व्याख्यान भी विभिन्न वेद मन्त्रों के आधार पर हैं। आप प्रत्येक दिए गए वेद मन्त्र की दी गई व्याख्या को ग्रहण कर इस पुस्तक के प्रत्येक चरण को एक व्याख्यान के रूप में तैयार किया गया स्वीकार सकते हैं, जिसे स्मरण करके अथवा पढ़कर जन मानस के सामने रख कर लोगों को उत्तम वेद मार्ग पर चलने की प्रेरणा करते हुए उत्तम प्रवचनकर्ता बन कर जन-जन में प्रशंसा के पात्र बन सकते हैं।

आभार प्रदर्शन: इस के निर्माण में जिन महान् लेखकों की पुस्तकों से सहायता ली गई है, जिन विद्वानों के उपदेशों व पुस्तकों की सहायता का लाभ उठाया गया है, जिनके विचारों से मार्ग मिला है, मैं उन सब का हृदय से आभारी हूँ। इस के प्रकाशन का सहयोग श्रुति प्रकाशन ने देकर यह पुस्तक आप के हाथों तक पहुंचाई है, उनका भी मैं हृदय से आभारी हूँ। पुस्तक का सुन्दर कलेवर बनाने में इसे टंकन करने वाले, मशीन पर चढ़ा कर छापने वाले तथा जिल्द बंदी कर यह पुस्तक आप के हाथों तक लाने वालों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। अत: मैं इसे टंकन करने वाले, मशीन पर कार्य करने वाले तथा इसकी जिल्द बंदी करने वालों का

(शेष पृष्ठ 6 पर)

अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि क्यों करें

ले.-मनमोहन कुमार आर्य, 196 चुक्खूवाला-2 देहरादून-248001

मनुष्य का आत्मा चेतन तथा शरीर जड़ पदार्थों से बना हुआ होने से शरीर की सत्ता जड़ है।

चेतन के प्रमुख गुण ज्ञान व कर्म करना होता है। हमारी आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म है। ईश्वर भी चेतन है और हमारी आत्मा से भी सूक्ष्म है। आत्मा से भी सूक्ष्म होने के कारण यह हमारी आत्मा के भीतर भी विद्यमान है। जीवात्मा अल्पज्ञ है तथा परमात्मा सर्वज्ञ है। प्रकृति जड़ है इसलिये इसमें किंचित भी ज्ञान व स्वविवेक से कर्म करने की क्षमता व गुण नहीं है। जड़ पदार्थ संवेदना से पूर्णतः रहित होते हैं। इन्हें किसी प्रकार का कभी कोई सुख व दुःख नहीं होता है। इस जड़ प्रकृति, जो सत्व, रज और तम गुणों की साम्यावस्था होती है, इससे ही ईश्वर ने यह संसार और इसके मुख्य पदार्थ सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, पृथिवीस्थ नाना प्रकार के पदार्थ बनायें हैं। मनुष्य भी पृथिवी के पदार्थों से अपनी आवश्यकता के अनुसार अपने ज्ञान व शारीरिक शक्ति से अपने उपयोग की वस्तुयें बनाता है। कागज, पुस्तक, मुद्रणालय, फोन, कम्प्यूटर, रेल, जहाज आदि मनुष्य से प्रकृति के पदार्थों से ही बनाये हैं। मनुष्य खेती करके अन्न व फल आदि उत्पन्न करता है, कपड़े का निर्माण करता है, पशु पालन करके गोदुग्ध व अन्य पदार्थों को प्राप्त करता है। इसी प्रकार वह कार्य प्रकृति से अपने भवन आदि बनाने की सामग्री को प्राप्त कर भवन निर्माण का काम जानने वाले व्यक्तियों से अपने लिये निवास आदि का निर्माण भी कराता है। यह इस कारण सम्भव होता है कि मनुष्य के शरीर के भीतर एक चेतन जीवात्मा है जो ज्ञान व कर्म करने की क्षमता से युक्त है। यह भी ज्ञातव्य है कि मनुष्य की आत्मा में जो ज्ञान होता है। वह अल्पज्ञ श्रेणी का होता है। ज्ञान दो प्रकार का होता है, स्वाभाविक एवं नैमित्तिक। स्वाभाविक ज्ञान आत्मा को अर्जित व प्राप्त नहीं करना पड़ता। वह उसे अपनी सत्ता व स्वभाव से प्राप्त रहता है अथवा ईश्वर की कृपा व पूर्व संस्कारों आदि से उपलब्ध होता है। एक पशु को तैरना सिखाना नहीं पड़ता।

रेगिस्तान में उत्पन्न यदि किसी पशु को नदी आदिमें डाल दें तो पहली बार पानी में गिरने पर भी तैर कर बाहर आ जाता है। इसका कारण पशु योनि में तैरने का स्वाभाविक ज्ञान ईश्वर की व्यवस्था से उपलब्ध होता है। मनुष्य के पास परमात्मा ने पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां दी हैं। इन इन्द्रियों से वह संसार को देखकर, सुनकर, सूंघ कर, स्वाद लेकर व स्पर्श करके पदार्थों के गुण, कर्म व स्वभावों को जानता है और उस ज्ञान का विश्लेषण व मनन कर उससे अपने ज्ञान में वृद्धि कर उससे अनेक उपयेगी पदार्थों का निर्माण भी करता है। अविद्या क्या है व इसका नाश करना आवश्यक क्यों है? इसका उत्तर है कि अल्पज्ञ, भ्रान्तियुक्त ज्ञान व अज्ञान को अविद्या कहते हैं। ईश्वर है, यह ज्ञान है परन्तु ईश्वर का स्वरूप कैसा है, इसका उत्तर अनेक मनुष्य अनेक प्रकार से देते हैं। जो सत्य ज्ञान से युक्त उत्तर देते हैं। वह विद्या और जो उत्तर सत्य न हो, असत्य व अर्धसत्य हो, उसे अविद्या कहते हैं। अविद्या व अज्ञान से मनुष्य की आत्मा व जीवन की उन्नति नहीं होती अपितु उसका जीवन सुख के स्थान पद दुःखमय होता है। संसार में मनुष्य ही नहीं अपितु पशु और पक्षी व अन्य प्राणियों का जीवात्मा भी सुख चाहता है, दुःख एक भी आत्मा व व्यक्ति नहीं चाहता। अतः यह जानना आवश्यक है कि दुःख का कारण क्या है और सुख की प्राप्ति का साधन क्या है? विचार करने पर दुःख का कारण अविद्या व अज्ञान ही सिद्ध होता है। सुखी व्यक्ति को देखें तो सुख का कारण भी विद्या व ज्ञान ही ज्ञात होता है। अतः मनुष्य जीवन का प्रमुख उद्देश्य अपने जीवन से अविद्या व अज्ञान को दूर करना सिद्ध होता है। अज्ञान को दूर करना ही अविद्या का नाश कहलाता है। इसके विपरीत विद्या की प्राप्ति ही सुख का साधन है। यह विद्या माता, पिता व आचार्यों सहित पुस्तकों के अध्ययन व विद्वानों की संगति से प्राप्त होती है। विद्या का प्रमुख व सर्वोपरि ग्रन्थ ईश्वर प्रणीत ज्ञान चार वेद हैं। वेद का अध्ययन करने से पूर्व वेदांग व उपांगों का अध्ययन करना आवश्यक है। वेदों के 6 अंग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष हैं। इन विषयों का अध्ययन कर लेने पर मनुष्य को वेद के देव भाषा संस्कृत के मंत्रों के अर्थों का ज्ञान हो जाता है। वेद और वेदांग से पूर्व 6 दर्शकों, उपनिषदों, मनुस्मृति, आयुर्वेद के ग्रन्थों सहित सत्यार्थप्रकाश एवं ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका आदि का अध्ययन भी उपयोगी होता है। ऋषि दयानन्द ने देशवासियों पर कृपा करके वेदों का सरल व सुगम वेदभाष्य संस्कृत व हिन्दी भाषाओं में उपलब्ध कराया है। इससे साधारण हिन्दी पढ़ने की योग्यता रखने वाला मनुष्य भी वेद के रहस्यों को समझ सकता है। ऋषि दयानन्द के ग्रन्थ अविद्या दूर कर विद्या प्रदान करने वाले संसार के सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। इनका अध्ययन किया हुआ व्यक्ति किसी महाविद्यालय के प्रवक्ता व स्नातक के समान ही शिष्ट, शिक्षित, संस्कारवान व चरित्रवान होता है। विद्या के बारे में कहा गया है कि 'विद्या ददाति विनयं।' इसका अर्थ है विद्या से मनुष्य में विनयशीलता व स्वभाव एवं व्यवहार में नम्रता, विनीतभाव, सहिष्णुता, देशभक्ति, परोपकार व दान की भावना, ईश्वरोपासना, कृतज्ञता, माता-पिता-आचार्य व विद्वानों के प्रति आदर भाव सहित समाज के प्रति सहयोग एवं समानता का भाव उत्पन्न होता है। यह विशेष गुण हमारी स्कूली या महाविद्यालयी शिक्षा से नहीं आते। यह वैदिक साहित्य या ईश्वरोपासना आदि से अथवा गुरुकुलीय शिक्षा से आते हैं। विचार करने पर प्रतीत होता है कि मनुष्य में सभी उत्कृष्ट गुण विद्या के केन्द्र हमारे वैदिक मान्यताओं पर चलने वाले गुरुकुल या वैदिक साहित्य के अध्ययन से ही प्राप्त होते हैं। स्कूली शिक्षा से हमें केवल भाषा, गणित, विज्ञान व कुछ कला विषयों का ज्ञान तो होता है परन्तु उससे हमारा चरित्र व व्यवहार नहीं सुधरता। यदि ऐसा होता तो आज हमारा देश भ्रष्टाचार और दुष्कर्मों से पूर्णतः मुक्त होता। इसके विपरीत हम राम, कृष्ण, चाणक्य, शंकर, दयानन्द, श्रद्धानन्द, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, पं. लेखराम, डॉ. रामनाथ वेदालंकार आदि के जीवन पर दृष्टि डालते हैं तो हम पाते हैं कि इन महापुरुषों के जीवन में सभी प्रकार के गुण विद्यमान थे और उनमें किसी अवगुण के होने का ज्ञान नहीं होता। अतः देश के सुविज्ञ जनों को वैदिक शिक्षा को प्रमुख अग्रणीय स्थान देना चाहिये। ऐसा होने पर ही देश महान व शक्तिशाली एवं समृद्ध राष्ट्र सहित सभी प्रकार के अन्ध-विश्वासों एवं सामाजिक असमानताओं से मुक्त हो सकता है। अतः इन सभी उपलब्धियों को प्राप्त करने के लिए हमें विद्या की वृद्धि करनी परमावश्यक है।

विद्या से अमृत व मोक्ष की प्राप्ति भी होती है। विद्या के अन्तर्गत ईश्वर के स्वरूप व उसके गुण, कर्म व स्वभाव का ज्ञान भी सम्मिलित है। ईश्वरोपासना व शुद्ध आचरण भी विद्या से प्राप्त होता है। यही हमें अमृत व मोक्ष को प्राप्त कराते हैं। मोक्ष प्राप्ति ही मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है। अतः विद्या व इसका पर्याय वेद ज्ञान के मनुष्यों मनसा, वाचा, कर्मणा प्रयत्नशील रहना चाहिये। इस चर्चा को यहीं विराम देते हैं।

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

सामवेद में ब्रह्म स्वरूप का निरूपण

ले०-शिवनारायण उपाध्याय, 73 शास्त्री नगर दादाबाड़ी, कोटा

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने वेदों में सामवेद को अपने स्वरूप में बतलाया है। वे कहते हैं-वेदानां सामवेदोऽस्मि मैं वेदों में सामवेद हूँ। हम श्रीकृष्ण को ब्रह्म स्वीकार नहीं करते हैं। परन्तु यह स्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति नहीं है कि वे योगियों में उच्च स्थान प्राप्त कर चुके थे। मुक्त आत्मा अपने को ब्रह्म के समान ही समझने लगती है, 'ब्रह्मेव भवति' परन्तु ब्रह्म नहीं बन जाती है। स्वामी शंकराचार्य का भी यह मत है कि मुक्त आत्माओं और ब्रह्म में भेद है। ब्रह्म सृष्टि के उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के करने वाले हैं तथा अपने इस काम में वह किसी भी मुक्त आत्मा से कोई सलाह नहीं करते है, और न ही उन्हें किसी भी सहायता की आवश्यकता ही है। वे जीवात्मा को उसके कार्य का फल भी प्रदान करते हैं। मुक्त जीवात्मा इनमें से कोई भी कर्म करने में समर्थ नहीं है। अत: यहां केवल यह समझना है कि वेदों में सामवेद का महत्व सर्वाधिक है। इसका मूल कारण यह है कि सामवेद में परा विद्या का वर्णन हुआ है। ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण हुआ है। ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना का ही इसमें विशेष वर्णन है। जीवात्मा की मुक्ति में ये सहायक हैं।

हम अब सामवेद के आधार पर संक्षेप में ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण करते हैं। सामवेद में ब्रह्म को प्रारम्भ से ही सब पदार्थों, ऐश्वर्यों और गुणों का धारक तथा दाता बताया गया है।

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्य दातये।

निहोता सत्सि बर्हिषि।।

साम. म. सं. 1

(अग्ने) हे परमेश्वर! (आ याहि) हमें प्राप्त हो (वीतये) ज्ञान के लिए (गृणान:) स्तुति किया गया (हव्य दातये) उत्तम पदार्थों के देने के लिए (नि) निश्चय रूप से (होता) दाता (सत्सि) विद्यमान है (बर्हिषि) ब्रह्माण्ड में।

भावार्थ-हे ईश्वर! आप ब्रह्माण्ड में सर्वव्यापक हैं। ज्ञान के सागर हमें ज्ञान देने के लिए, सभी आवश्यक जीवन पदार्थ प्रदान करने के लिए आप हमें प्राप्त होंवे। सभी दिव्य पदार्थ अपना आश्रय परमात्मा में ही खोजते हैं।

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हित:।

देवेभिर्मानुषे जने।।

साम. म. सं. 2

अर्थ-(त्वम्) तू (अग्ने) हे परमेश्वर! (यज्ञानाम्) उत्तम व्यवहारों का (होता) दाता (विश्वेषाम्) सब (हित:) कल्याणकारी (देवेभि:) विद्वानों और दिव्य पदार्थों द्वारा (मानुषे जने) मनुष्य समाज पर।

भावार्थ-हे परमेश्वर! तू समस्त उत्तम व्यवहारों का दाता तथा मनुष्य समाज पर विद्वानों एवं दिव्य पदार्थों द्वारा कल्याण करने वाला है।

परमात्मा सूर्य के समान प्रकाशक है। इस पर कहा गया है-

अश्वन्न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निन्नमोभि:।

सम्राजन्तमध्वराणाम्।।

साम. म. सं. 17

अर्थ-(अश्वम् न) सूर्य के समान (त्वा) तुझ (वारवन्तम्) अन्धकार निवारक की (वन्दध्यै) वन्दना करता हूँ। (अग्निम्) परमेश्वर की (नमोभि:) नमस्कारों से (सम्राजम्) सम्राट (तम्) उस (अध्वराणाम्) कल्याणकारी यज्ञों के।

अर्थ-हे परमेश्वर! तू सूर्य के समान प्रकाशक और अन्धकार निवारक है। मैं तेरी वन्दना करता हूँ। तू कल्याणकारी व्यवहारों का दाता है। हमें सब प्रकार का धन परमात्मा से ही प्राप्त होता है। वही सब धनों का एक मात्र स्वामी है।

अग्नि स्तिग्मेन शोचिषा यंसद्विश्वं न्य इत्रिणम्।

अग्निर्नो वंसते रयिम्।।

साम. मं. सं. 22

अर्थ-(अग्नि:) परमेश्वर (तिग्मेन) प्रचण्ड (शोचिषा) तेज से (संसत्) नियम में रखता है (न्यत्रिणाम्) पाप करने वाले को (अग्नि:) परमेश्वर (न:) हमें (वंसते) देता है (रयिम्) धन को।

भावार्थ-परमेश्वर अपने प्रचण्ड तेज से पापियों को नियम में रखता है। परमेश्वर ही हमें धन प्रदान करता है।

परमेश्वर सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी है। जल में तरलता वही देता है।

अग्निर्मूर्द्धा दिव ककुत् पति: पृथिव्या अयम्।

अपां रेतांसि जिन्वति।।

साम. मं सं. 27

अर्थ-(अग्नि:) परमेश्वर (मूर्द्धा) सर्वोपरि (दिव:) द्युलोक का (ककुत्) महान् (पति:) स्वामी (पृथिव्या:) पृथ्वी लोक का (अयम्) यह (अपाम्) जल के (रेतांसि) मूल कारणों को (जिन्वति) गति देता है।

भावार्थ-परमात्मा सर्वोपरि तथा द्युलोक और पृथ्वी लोक का स्वामी है। वही जल के मूल कारणों को गति देता है।

ईश्वर अजर, अमर और सर्वज्ञ है। हम अनेक प्रकार से उसकी स्तुति करते हैं। **(क्रमश:)**

आर्य गर्ल्ज़ सी० सै० स्कूल का नतीजा शत-प्रतिशत रहा

पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड द्वारा घोषित दसवीं कक्षा के परिणाम में आर्य गर्ल्ज़ सी. सै० स्कूल बठिण्डा के बच्चों का प्रदर्शन बढ़िया रहा। छात्रा नेहा पुत्री रमेश कुमार ने 87% अंक प्राप्त करके प्रथम स्थान हासिल किया। छात्रा निहारिका और साक्षी ने दूसरा और तीसरा स्थान हासिल किया। स्कूल की प्रिंसीपल श्रीमती सुषमा मेहता जी ने तथा समूह स्टाफ ने बच्चों को बधाई दी। मैडम प्रिंसीपल ने सभी अध्यापिकाओं और बच्चों की कड़ी मेहनत की प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि बच्चें इसी तरह अपनी लग्न से परिश्रम करते रहें और आगे बढ़ें। बच्चों के उज्जवल भविष्य की कामना की। बच्चों का मुँह मीठा करवाया गया तथा उन्हें इनाम देकर सम्मानित किया गया। स्कूल के प्रधान श्री अनिल अग्रवाल जी, उपप्रधान श्री सुरिन्द्र गर्ग जी और मैनेजर श्री निहाल चन्द जी ने भी सभी बच्चों को बधाई दी।

-प्रिंसिपल

पृष्ठ 4 का शेष-उत्तम बुद्धि वाले...

भी हृदय से आभारी हूँ, जिन सब के सतत् प्रयास के कारण यह पुस्तक सुन्दर क्लेवर लेकर आप के हाथों तक पहुँच पाई। पुस्तक की सफलता इसके शुद्धि रहित होने में होती है किन्तु मानव गलती का पुतला है, कितना भी प्रयास किया जावे कोई न कोई त्रुटि छूट ही जाती है। सब संभव प्रयास करने पर भी कोई त्रुटि दिखाई देवे तो उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ।

यदि इस पुस्तक में कोई कमी रह जाती है तो उस सब का कारण मैं अपनी अल्प बुद्धि को मानता हूँ और जो कुछ उत्तम है, उसके लिए श्रेय इसे उत्तम बनाने वाले कर्मचारियों को ही जाता है।

देखने में लघु सी लगने वाली इस पुस्तक से यदि कोई प्राणी लाभ उठा कर अपने जीवन को उत्तम बना सका, कोई माता-पिता, भाई-बहिन अथवा कोई भी इस पुस्तक से मार्ग-दर्शन पाकर स्वयं व अपनी संतान के कल्याण का कारण बन सके तो मैं स्वयं को सफल समझूंगा। इसमें कोई त्रुटि रह गई हो तो अवगत करावें, उसे आगामी संस्करण में दूर कर दिया जावेगा।

आर्य मर्यादा साप्ताहिक में विज्ञापन देकर लाभ उठाएं।

पृष्ठ 2 का शेष-मुक्ति-मीमांसा

मुक्ति ही किस प्रकार सदा-सदा के लिए हो सकती है?

मुक्ति प्रत्येक व्यक्ति को नियमत: अनिवार्य रूप से प्राप्त नहीं है। इसमें किसी को भी कोई विप्रतिपत्ति नहीं है। सभी मानते हैं कि मुक्ति प्राप्त करने के लिए अधिकारी होना आवश्यक है। संसार में कौन सा ऐसा अधिकार है जो अधिकारी को प्राप्त तो हो जाये, किन्तु उस अधिकार की कोई सीमा न हो? निश्चय ही सभी की सीमा रहती है, तब प्रयत्न साध्य मुक्ति की कोई सीमा या काल न हो, ऐसा किस प्रकार सम्भव है? इस सन्दर्भ में 'याददधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणाम्' यह वेदान्त सूत्र स्मरणीय है। इस सूत्र के शङ्करभाष्य में व्यास, वशिष्ठ, भृगु, सनत्कुमार, दक्ष, नारद आदि मुक्तों का वर्णन है। आचार्य शङ्कर पुनरावृत्ति तो नहीं मानते, क्योंकि जन्म का कोई कारण शेष नहीं रहता, किन्तु उक्त व्यास आदि के मुक्ति का अधिकारी होने पर भी इन्हें मुक्ति से रोके रखना, स्तब्ध करना (परमेश्वर ने जगत् की भलाई का अधिकार देकर रोके रखा) मानते हैं। क्या यह अन्याय नहीं है कि ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते आदि वचन वेदान्तसूत्र का समर्थन करते हैं।

जीव का ज्ञान व प्रयत्न सीमित है। अत: वह जो भी कर्म करेगा, भले ही वह मुक्ति प्राप्त करने के लिए किये जाएं अथवा नैयायिकों के अनुसार मिथ्या ज्ञान की निवृत्त्यर्थ ज्ञानार्जन जिससे क्रमश: दोष, प्रवृत्ति, जन्म, दु:ख निवृत्त होकर अपवर्ग-मोक्ष की प्राप्ति हो। ये सभी सीमित ही होंगे। इनके सीमित होने पर असीमित फल की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है? लोक में भी पुरस्कार या दण्ड की मात्रा कर्मानुसार ही रहती है और इससे विपरीत हो तो उसे अन्याय कहा जाता है। साथ ही फल प्रदाता के ज्ञान की न्यूनता का बोधक भी माना जाता है। ईश्वर सर्वज्ञ एवं न्यायकारी है। अत: न्यूनाधिक फल प्रदान का प्रश्न नहीं। इसीलिए सीमित कर्म का फल मुक्ति सीमित काल के लिए ही होगा। फलयोग के अनन्तर जीव का मुक्ति से लौटना युक्ति सिद्ध है। साथ ही यदि मुक्ति तो प्राप्त हो, किन्तु पुनरावृत्ति न हो तब एक न दिन इस संसार का उच्छेद अवश्यम्भावी है, किन्तु संसार का उच्छेद कभी नहीं होता। जिस प्रकार इस समय बन्धमुक्त जीव हैं, उसी प्रकार सदैव बने रहते हैं।

जीव के मुक्ति के आनन्द को भोगकर पुन: जन्म-मरण के प्रवाह में आने का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण है-जीव के मोक्ष प्राप्त करते समय उसके साथ अभौतिक सूक्ष्मशरीर रहता है। जिसमें उसके स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं, इन्हीं के द्वारा जब सुनना चाहता है। तब श्रोत्र, स्पर्श करना चाहता है। तब त्वचा, देखने के संकल्प से चक्षु, रस की चाह होने पर रसना, सूंघने के लिए घ्राण, संकल्प-विकल्प के समय मन, निश्चय के लिए बुद्धि, स्मरण के लिए चित्त, अहंकार के लिए अहंकार रूप स्वशक्ति से हो जाता है। यद्यपि जीव जिस प्रकार के कर्म स्थूल शरीर में रहते हुए करता है, उस प्रकार के कर्म मुक्ति में नहीं करता, किन्तु संकल्प आदि स्वाभाविक गुणों से युक्त होने तथा संकल्पमात्र शरीर द्वारा-श्रवण, स्पर्श, रसन् जिघ्रन आदि करने तथा निर्बाध गमनागमन से स्पष्ट है कि कर्माशय रहता है। भले ही उसे पुण्यकर्माशय कहा जाए। इसी कर्माशय के कारण मुक्तात्मा जगत् में लौटकर पुन: कर्मों में प्रवृत्त होते हैं।

जीव ब्रह्म सम्बन्ध-जीव के मुक्ति प्राप्त कर लेने पर जीव-ब्रह्म का सम्बन्ध किस प्रकार का होता है? यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस विषय में अनेक पक्ष हैं। सर्वाधिक स्थूल पक्ष है-चतुर्विध मुक्ति की कल्पना। 1. सालोक्य 2. सामीप्य, 3. सानुज्य, 4. सायुज्य। महर्षि दयानन्द ने पौराणिकाभिमत गोलोक आदि लोक विशेष में प्राप्य इस चतुर्विध मुक्ति को मुक्ति नहीं माना जाता है। महर्षि के अनुसार ईश्वर के सर्वव्यापक होने से यह स्वत: सिद्ध हैं। मुक्ति में जीव-ब्रह्म सम्बन्ध विषयक दूसरा मत है-जीव का ब्रह्म में लय हो जाना, ब्रह्मस्वरूप हो जाना अथवा अंश का अपने अंशी में विलीन हो जाना। महर्षि का अभिमत इससे विपरीत है। महर्षि मानते हैं कि जब जीव ब्रह्म में मिल जाता है, तब मुक्ति सुख कौन भोगता है? यह मुक्ति नहीं जीव का प्रलय है, अथवा 'ब्रह्म में लय होना समुद्र में डूब मरना है।'

जीव को ब्रह्म का अंश कहने का आधार वेदान्त का निम्न सूत्र है-'अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापि दाशकितवादित्वमधीयत एके। सूत्र में न तो ब्रह्म पद पठित है और न ही पूर्वसूत्र कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्य: से ब्रह्म की अनुवृत्ति है। अंशाशिभाव मानने का आचार्य शङ्कर का आग्रह कितना लचर है, इसे उन्हीं के शब्दों में देखा जा सकता है-"अंश इवांश:। न हि निरवयवस्य मुख्योऽश: सम्भवति निरवयव का अंश नहीं हो सकता। अत: अंश का अर्थ= 'अंश सा' करना चाहिए। यह खींचातानी किस लिए? यहां जीवात्मा के एकदेशीय होने का कथन है-अनेक होने के कथन से जीव एकदेशीय है, अन्य कारणों (अन्यथा च अपि) से भी। क्योंकि कुछ लोग जीवात्मा के दासत्व और कितवादित्व का पाठन करते हैं। यदि वह एकदेशी न हो तो दासत्व कितवादि त्वादि का व्यवहार किस प्रकार सम्भव है?

अत: जीव न हो तो ब्रह्म का अंश है और नहीं विभु। क्योंकि अंश में मात्रात्मक भेद तो सम्भव हैं, गुणात्मक नहीं। ब्रह्म यदि सर्वज्ञ है तब उसका अंश अज्ञ, यदि वह मुक्त है तो यह बद्ध किस प्रकार? इत्यादि।

निष्कर्ष-संक्षेप में कहा जा सकता है कि अनादि नित्य जीव कर्म करने में स्वतन्त्र किन्तु कर्मफल ईश्वरीय व्यवस्थानुसार प्राप्त करता है। वह सुख दु:ख रूप में प्राप्त होता है। दु:ख को छोड़कर सुख प्राप्त करना चाहता है। लौकिक उपायों से क्षणिक सुख की प्राप्ति होती है। अविद्यादि की निवृत्ति तथा ईश्वरप्रणिधान आदि से जन्म-मरण के प्रवाह को अवरूद्ध कर ईस्वरीय आनन्द मोक्ष सुख को प्राप्त कर लेता है। जीव के अल्पक्ष, एकदेशी, नित्य होने के कारण इसके सीमित कर्मों का फल मोक्ष भी सीमित अविध (31 नील, 10 खरब, 40 अरब वर्ष) तक भोगकर पुन: शरीर धारण करता है। नित्य, एकादेशी होने के कारण न तो इसका लय होता है और न ही स्वरूप परिवर्तन। अंशाशिभाव के पोषक आचार्य शंकर की विवशता वेदान्त 2.3.4.3 के भाष्य में ऊपर द्रष्टव्य है।

मोक्ष के सन्दर्भ में महर्षि दयानन्द का अभिमत पूर्णत: शास्त्रसम्मत तथा युक्ति युक्त है। जिसके अनुसार मुक्ति में जीव अभौतिक सूक्ष्म शरीर से निश्चित अवधि तक आनन्द का भोग कर पुन: शरीर धारण करता है।

सभा के पूर्व लेखाकार श्री वीरेन्द्र शर्मा जी नहीं रहे

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के पूर्व लेखाकार एवं मधुर भजनोपदेशक श्री वीरेन्द्र शर्मा जी का दिनांक 14 मई को अकस्मात् निधन हो गया। श्री वीरेन्द्र शर्मा जी एक समर्पित कार्यकर्ता थे। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कार्यालय जालन्धर में लेखाकार के पद पर रहते हुए उन्होंने अपना कार्य ईमानदारी के साथ किया। आर्य समाज पुतलीघर अमृतसर के मन्त्री पद पर रहते हुए उन्होंने आर्य समाज की उन्नति के लिए कार्य किया। श्री वीरेन्द्र शर्मा जी एक मधुर भजनोपदेशक भी थे तथा श्री वीरेन्द्र कुलदीप साथी भजन मण्डली के रूप में जाने जाते थे। उनका अन्तिम संस्कार दिनांक 15 मई को वैदिक रीति से सम्पन्न किया गया। श्री वीरेन्द्र शर्मा जी के अकस्मात् चले जाने से आर्य समाज की अपूरणीय क्षति हुई है। परमपिता परमात्मा दिवंगत आत्मा को अपने चरणों में स्थान दे तथा शान्ति एवं सद्गति प्रदान करें।

-प्रेम भारद्वाज संपादक एवं सभा महामन्त्री

श्री.पी.डी.गोयल बठिंडा नहीं रहे

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अन्तरंग सदस्य एवं आर्य समाज चौक बठिंडा के पूर्व प्रधान श्री पी.डी. गोयल का दिनांक 15 मई को अकस्मात् निधन हो गया। श्री पी.डी. गोयल जी आर्य समाज के एक समर्पित कार्यकर्ता थे। श्री पी. डी. गोयल जी ने बठिंडा में आर्य शिक्षण संस्थाओं के अनेकों पदों पर रहते हुए एवं आर्य समाज के प्रधान पद पर रहते हुए हमेशा आर्य समाज की उन्नति के लिए कार्य किया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अन्तरंग सदस्य एवं मन्त्री पद पर रहते हुए सभा के लिए अमूल्य योगदान दिया। श्री पी.डी. गोयल के निधन से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब एवं आर्य समाज बठिंडा की अपूरणीय क्षति हुई है। परमपिता परमात्मा दिवंगत आत्मा को शान्ति एवं सद्गति प्रदान करे तथा अपने चरणों में स्थान दे।

-प्रेम भारद्वाज संपादक एवं सभा महामन्त्री

मातृ दिवस मनाया गया

आर्य समाज मानसा के सभी वरिष्ठ पदाधिकारियों तथा आर्य सी. सै. स्कूल मानसा के प्रधानाचार्य एवं शिक्षक शिक्षिकाओं की देख-रेख में 13 मई को साप्ताहिक सत्संग में मातृ दिवस मनाया गया। यज्ञोपरान्त मातृ दिवस के ऊपर चर्चा हुई। मातृ दिवस की महत्ता बताते हुए कहा कि भारतीय संस्कृति में तो प्रतिदिन मातृ दिवस मनाने की परम्परा है अर्थात् प्रतिदिन माता-पिता का आशीर्वाद प्राप्त करने से मनुष्य के अन्दर आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि होती है। इसलिए हमें नारी जाति का सम्मान करना चाहिए क्योंकि शास्त्रों में कहा गया है कि- यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता और मातृ देवो भव कहकर माँ की महिमा का वर्णन किया गया है। आज की युवा पीढ़ी को अपनी संस्कृति और सभ्यता के साथ जोड़ने की आवश्यकता है। इस अवसर पर भारी संख्या में लोगों ने भाग लिया। शान्तिपाठ के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

-मन्त्री आर्य समाज मानसा

आर्य समाज वेद मंदिर आर्य नगर जालन्धर का 40वां वार्षिक उत्सव सम्पन्न

आर्य समाज आर्य नगर जालन्धर के वार्षिक उत्सव पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उप प्रधान श्री सरदारी लाल जी आर्य रत्न, सभा महामंत्री श्री प्रेम भारद्वाज जी, सभा कोषाध्यक्ष श्री सुधीर शर्मा जी, आर्य विद्या परिषद पंजाब के रजिस्ट्रार श्री अशोक परूथी जी, सभा मंत्री श्री सुदेश कुमार जी, सभा मंत्री श्री रणजीत आर्य जी के पहुंचने पर पुष्पमाला पहना कर स्वागत करते हुये आर्य समाज आर्य नगर के प्रधान श्री सत्यपाल जी आर्य, मंत्री श्री वेद आर्य जी एवं कोषाध्यक्ष श्री अनिल आर्य एवं चित्र चार में उपस्थित आर्य जनसमूह।

आर्य समाज वेद मन्दिर आर्य नगर जालन्धर का 40 वां वार्षिक उत्सव 10 मई वीरवार से 13 मई रविवार 2018 तक बड़े उत्साह एवं हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। इस अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक श्री विजय शास्त्री के प्रवचन तथा भजनोपदेशक श्री जगत वर्मा जी के मधुर भजन हुए। प्रतिदिन रात्रि 10 मई वीरवार से 12 मई शनिवार तक 7:00 से 10:00 बजे तक अलग-अलग परिवारों में पारिवारिक सत्संग का आयोजन किया गया। भारी संख्या में लोगों ने पारिवारिक सत्संगों में भाग लेकर भजनों व प्रवचनों का आनन्द लिया।

13 मई 2018 रविवार को विशेष कार्यक्रम का आयोजन विश्व शान्ति महायज्ञ के साथ प्रातः 8:00 से 9:30 बजे तक किया गया। यज्ञ के ब्रह्मा श्री विजय कुमार शास्त्री जी ने पावन वेद मन्त्रों की ऋचाओं के द्वारा यज्ञ सम्पन्न कराया। मुख्य यजमान श्री निर्मल आर्य मन्त्री आर्य समाज बस्ती बावा खेल तथा अन्य बहुत से परिवारों ने यजमान बनकर यज्ञ में आहुतियां डाली। यज्ञ के पश्चात सभी यजमानों ने विद्वानों का आशीर्वाद प्राप्त किया। इसके बाद श्री तरसेम लाल जी मैनेजर यूको बैंक के करकमलों द्वारा ध्वजारोहण किया गया। ध्वजारोहण के पश्चात सभी श्रद्धालुओं ने प्रातःराश ग्रहण किया। ठीक 11:00 से 2:00 बजे तक आर्य महासम्मेलन आर्य प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान श्री सरदारी लाल आर्य रत्न की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ। इस अवसर पर मुख्य अतिथि श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब तथा उनके साथ श्री सुधीर शर्मा कोषाध्यक्ष आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, श्री अशोक परूथी एडवोकेट रजिस्ट्रार आर्य विद्या परिषद् पंजाब, श्री सुदेश कुमार सभा मंत्री, श्री रणजीत आर्य जी सभा मंत्री विशेष रूप से उपस्थित हुए। आर्य समाज वेद मन्दिर आर्य नगर के सभी अधिकारियों द्वारा आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के सभी अधिकारियों का पुष्पमालाएं पहना कर स्वागत किया गया। इस अवसर पर स्त्री आर्य समाज भार्गव नगर की भजन मण्ड़ली, श्री राजेश अमर प्रेमी, आर्य नगर की बेटियों के तथा आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मधुर भजनोपदेशक श्री जगत वर्मा जी के सुमधुर भजन हुए। प्रभु भक्ति तथा देशभक्ति के भजनों ने वातावरण को सुन्दर बना दिया। इसके पश्चात आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक श्री विजय कुमार शास्त्री, श्री सुरेश शास्त्री तथा श्री सुशील शर्मा का प्रवचन हुआ। सभी ने अपने उद्‌बोधन में लोगों को धर्म के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी।

मुख्य अतिथि श्री प्रेम भारद्वाज जी ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज की स्थापना करके संसार का जो उपकार किया है, उस ऋण को नहीं चुकाया जा सकता। उन्होंने सभी आर्य जनों को अन्धविश्वास तथा पाखण्ड़ से बचने की प्रेरणा दी। उन्होंने बताया कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के तत्वावधान में 11 नवम्बर 2018 को बरनाला में आर्य महासम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है इसलिये सभी आर्य समाजों से निवेदन है कि वह इन तिथियों को अपनी आर्य समाज का उत्सव न रखें। महासम्मेलन के अध्यक्ष श्री सरदारी लाल जी आर्य ने सभी को अपना आशीर्वाद दिया और सभी को ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों पर चलने की प्रेरणा देते हुए एकजुट होने का सन्देश दिया।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के सभी अधिकारियों को स्मृति चिह्न देकर सम्मानित किया गया। कार्यक्रम में सहयोग देने वाले सभी परिवारों को भी इस अवसर पर सम्मानित किया गया। इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए सर्वश्री तिलक राज, राज कुमार, तरसेम लाल, सुरेन्द्र कुमार, विशाल सिंह, ओम प्रकाश खोखा, सतपाल आर्य, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मन्त्री श्री सुदेश कुमार एवं श्री रणजीत आर्य, श्री अश्विनी डोगरा जी, श्री रामपाल जी तथा भिन्न-भिन्न आर्य समाजों के अधिकारी तथा सदस्य उपस्थित हुए। शान्तिपाठ के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ। आए हुए सभी आर्यजनों ने ऋषि लंगर ग्रहण किया।

वेद आर्य महामन्त्री
आर्य समाज आर्य नगर जालन्धर

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।